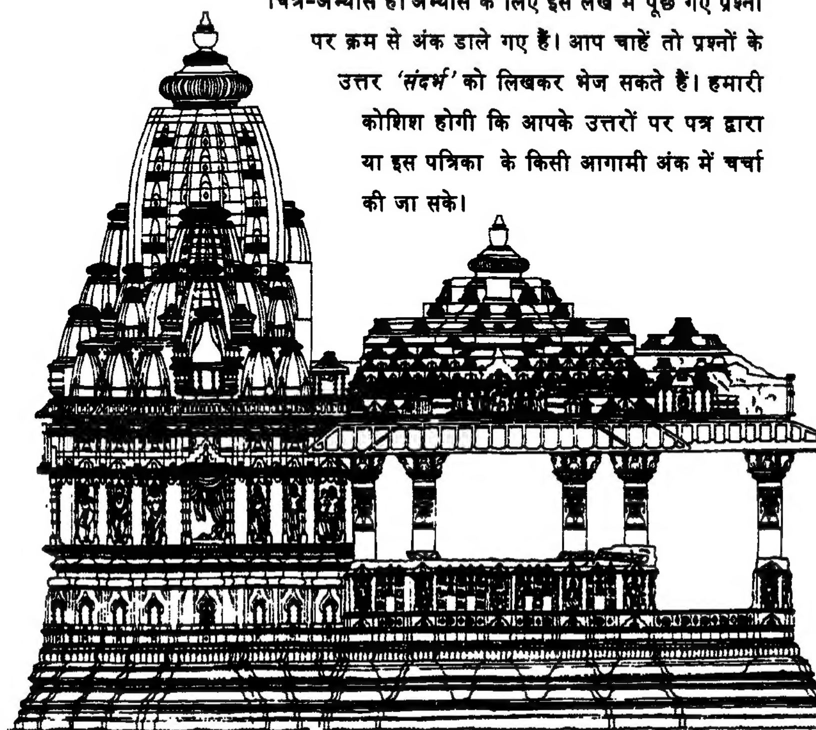
ये ढांचे कैसे बने .... ?

रश्मि पालीवाल

भारतीय भवन निर्माण कला के इतिहास में कई कड़ियां हैं। घास फूस के भवन, लकड़ी के भवन, चट्टानों को खोदकर बनाए गए भवन, पत्थर की सिलों को जोड़कर बनाए गए भवन, ईंट-गारे से बने भवन ......। इस लेख में इन कड़ियों पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

यह भारत की प्राचीन स्थापत्य कला के कुछ उदाहरणों पर आधारित एक चित्र-अभ्यास है। अभ्यास के लिए इस लेख में पूछे गए प्रश्नों पर क्रम से अंक डाले गए हैं। आप चाहें तो प्रश्नों के उत्तर *'संदर्भ'* को लिखकर भेज सकते हैं। हमारी कोशिश होगी कि आपके उत्तरों पर पत्र द्वारा या इस पत्रिका के किसी आगामी अंक में चर्चा की जा सके।



लकड़ी की इमारतों से पत्थर की इमारतों तक ....

सांची, भारहुत आदि स्तूपों के तोरण द्वारों पर खुदे दृश्यों के आधार पर पर्सी ब्राउन अनुमान लगाते हैं कि मौर्य कालीन गांवों का दृश्य कैसा रहा होगा। पुरातात्विक खुदाई से भी जान पड़ता है कि उन दिनों घर बनाने के लिए सरकण्डों, घास-फूस, पत्तों व लकड़ी का उपयोग बहुत होता था। कुछ हद तक शहरों में कच्ची ईंट व खपरैल जैसी निर्माण सामग्री भी काम में लाई जाती थी।

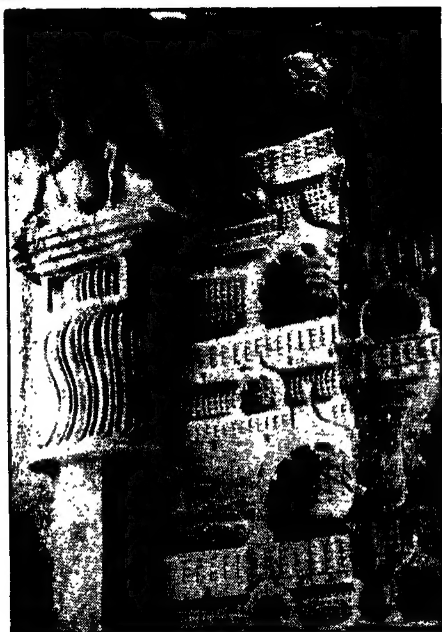
उन दिनों पत्थर का उपयोग सीमित था। सोचिए तो भला क्यों?

चित्र 1. एक काल्पनिक मौर्यकालीन गांव

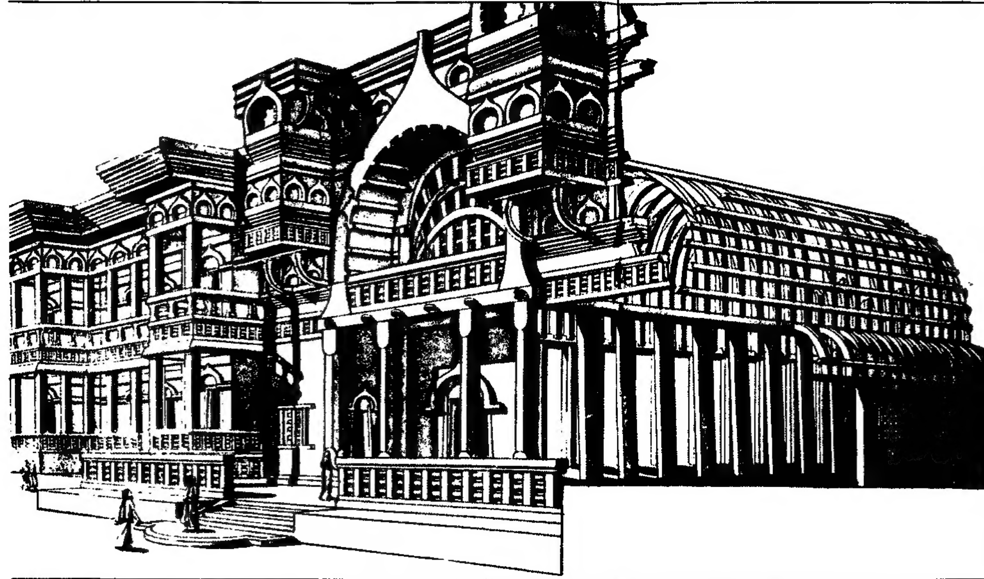




चित्र 2. यह भारहुत स्तूप (लगभग 150 ई.पू.) से मिली एक नक्काशी है। इसमें लकड़ी व बांस से बने घर दिख रहे हैं।



चित्र 3. बेदसा की गुफा पर बनी नक्काशी (लगभग 50 ई.पू.)। इसमें भी बांस और लकड़ी से बनी इमारतों को दिखाया गया है।



चित्र 4. लकड़ी से बनी एक भव्य इमारत का ढांचा – एक कल्पना

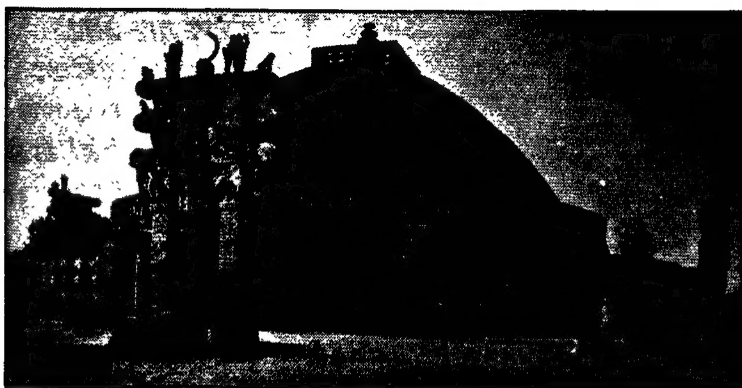
लकड़ी से बने एक बड़े भवन के अनुमानित ढांचे को चित्र 4 में देखें। मौर्य तथा मौर्योत्तर काल में इस तरह के भवन शहरों में पाए जाते थे। चित्र -1 और 4 को गौर से देखिए और बताइए,

- तोरण द्वार और बागुड़ (जिसे वेदिका कहा जाता था) बनाने के लिए लकड़ियां कैसे जोड़ी गई हैं? (2)

- छत को गोलाकार कैसे बनाया गया है? (3)

- छत के लिए लकड़ी का ढांचा बनाने के बाद उसे ऊपर से किन-किन तरीकों से पाटा गया है? (चित्र-1 में चार अलग चीज़ों से पाटी गई छतों को देखिए।) (4)

उन दिनों के कारीगरों व कलाकारों के मन में लकड़ी से निर्माण की तकनीक और लकड़ी से बने ढांचों की छवि इतनी गहराई तक बसी हुई थी कि आगे चलकर जब लोग पत्थर से इमारतें बनाने लगे तब भी काष्ठकला का असर उन पर बना रहा। निर्माण की सामग्री में लकड़ी के स्थान पर पत्थर का उपयोग होने के बावजूद कुछ परम्पराएं तब भी बनी रहीं। आइए इसके कुछ उदाहरण देखते हैं।

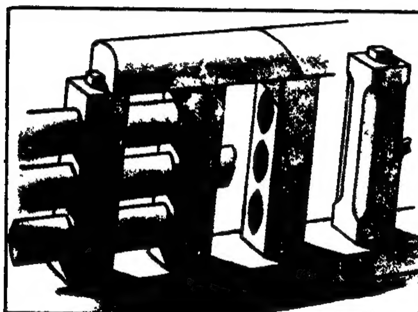


चित्र 5. सांची स्तूप

स्तूप

बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी अस्थियों के ऊपर जगह-जगह कई स्तूप बनाए गए। स्तूप एक तरह का टीला होता है - अन्दर से ठोस। मिट्टी की कच्ची ईंटों व पत्थरों को एक के ऊपर एक जमाकर इसे बनाया जाता था। ऊपर से मिट्टी या चूने का पलस्तर चढ़ाया जाता था। स्तूप को चारों तरफ से बागुड़ और तोरण द्वारों से घेरा जाता था। (चित्र-5, 6)

स्तूप के तोरण द्वार और वेदिका (बागुड़) पहले लकड़ी के बनाए जाते थे, पर फिर इन्हें पत्थर से बनाया जाने लगा।



- पत्थर का उपयोग करने की कोशिश क्यों हुई होगी? (4)

चित्र 6. वेदिका या बागुड़

इमारतों को ज़्यादा भव्य, ज़्यादा मज़बूत और ज़्यादा चिरस्थाई बनाने के लिए कारीगरों ने पत्थर का उपयोग तो किया लेकिन उन्हें ज़्यादा अभ्यास तो लकड़ी के काम का ही था। इसकी पुरानी परम्परा भी बन चुकी थी। इसलिए पत्थरों की वेदिका भी ठीक वैसे ही जोड़ी गई जैसे लकड़ी की जोड़ी जाती थी। चित्र 1, और चित्र 6 से इस बात को समझें।

- *पत्थर के तोरण द्वार बनाने में भी इसी तरीके का उपयोग कैसे किया गया दिखता है? (5)*
- *पत्थर से वेदिका और तोरण द्वार क्या किसी और तरीके से बनाए जा सकते हैं? ज़रा सोचिए। (6)*

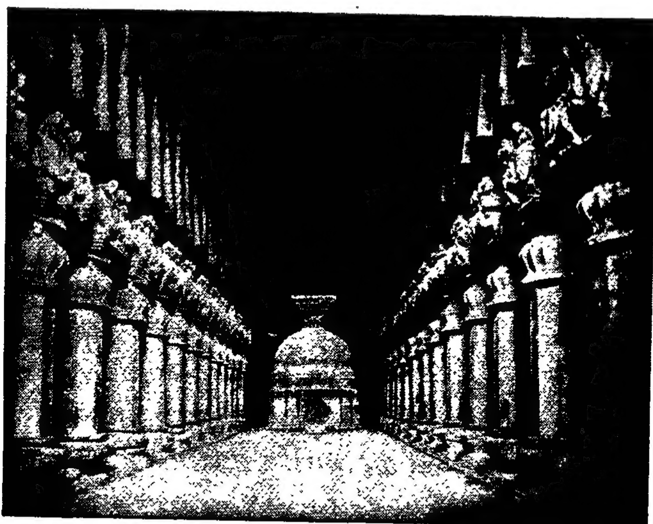
चैत्य एवं विहार

लकड़ी की बजाए पत्थर से इमारतें बनाने की कोशिश जारी रही। शुरू में पत्थर से ज़मीन पर स्वतंत्र रूप से खड़ी हुई इमारतें बनाने की बजाए छोटी-छोटी पहाड़ियों में गुफाएं खोदी गईं। ये गुफाएं लम्बी-चौड़ी पहाड़ियों का हिस्सा बनी रहीं-वे अलग से स्वतंत्र खड़ी की गई इमारतें नहीं थीं।



चित्र 7. गुफा के ऊपर और नीचे पहाड़ का बिना तराशा हुआ हिस्सा दिख रहा है

अशोक के समय से (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) शुरू होकर सैकड़ों ऐसी गुफाएं बनाई गईं। जिन गुफाओं के अंदर पूजा के लिए स्तूप बनाए जाते थे वे 'चैत्य' कहलाती थीं। इसी तरह जिन गुफाओं में भिक्षुओं के ठहरने के लिए कमरे बने होते थे वे 'विहार' कहलाती थीं।



चित्र 8. पहाड़ के अंदर बनाई गई गुफा की छत को ध्यान से देखिए और चित्र 4 के भवन से तुलना करते हुए दोनों छतों में समानता पहचानिए।

- *छत की चट्टान पर तराशे गए गोलाकार पटियों की क्या उपयोगिता नज़र आ रही है? (7)*
- *क्या छत इन पत्थरों के पटियों के सहारे बनाई गई है? अगर ये पटिए नहीं तराशे जाते तो क्या छत ढह जाती? (8)*
- *चित्र-7 में गुफा के प्रवेश द्वार के ऊपर बने विशाल अर्द्धगोलाकार हिस्से को देखिए। इसके अंदरूनी भाग में*

थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पत्थर में पटिए क्यों तराशे गए हैं? (9)

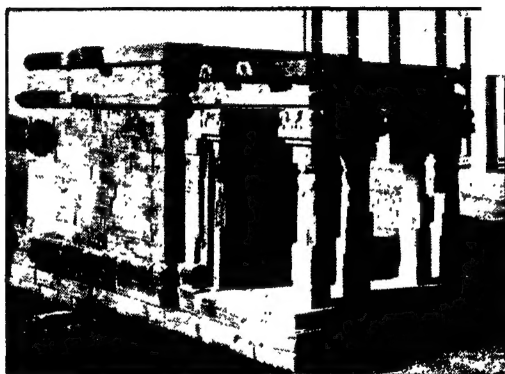
- ये पटिए आपको किस चीज़ की याद दिलाते हैं? (10)

- चित्र-8 में गुफा में बने हुए भव्य खम्भे दिख रहे हैं। क्या ये छत को टिकाने के लिए बनाए गए हैं या किसी और कारण से बने हैं? (11)

एक तरफ जहां हमारा ध्यान लकड़ी से निर्माण करने की तकनीकों के असर की ओर जाता है तो दूसरी ओर हम यह भी महसूस करते हैं कि चैत्यों और विहारों को बनाने में भारी भरकम चट्टानों को काटने व तराशने की तकनीक को कितनी हिम्मत और मेहनत से विकसित किया गया था। शायद इसीलिए इन भव्य ढांचों को शिल्पकला के कार्य के रूप में ज़्यादा समझा जाता है और भवन निर्माण के रूप में कम।

पत्थर के स्वतंत्र मंदिर

पहाड़ काटकर कई चैत्य, विहार और मंदिर बनाए जाने लगे, पर हर जगह तो पहाड़ उपलब्ध नहीं हैं। ज़ाहिर है कि पत्थर से स्वतंत्र रूप से ज़मीन पर खड़ी इमारतें बनाने का प्रयोग जारी रहा। शुरू में छोटे और सरल भवन बनाए गए। गुप्त काल में (350-500 ईसवी) ऐसी इमारतें बनाई जाने लगीं -



चित्र 9.
सांची का मंदिर नं. 17.
भारत के शुरुआती स्वतंत्र मंदिरों में से एक

- इन मंदिरों में पत्थरों को कैसे जोड़ा गया है? (12)

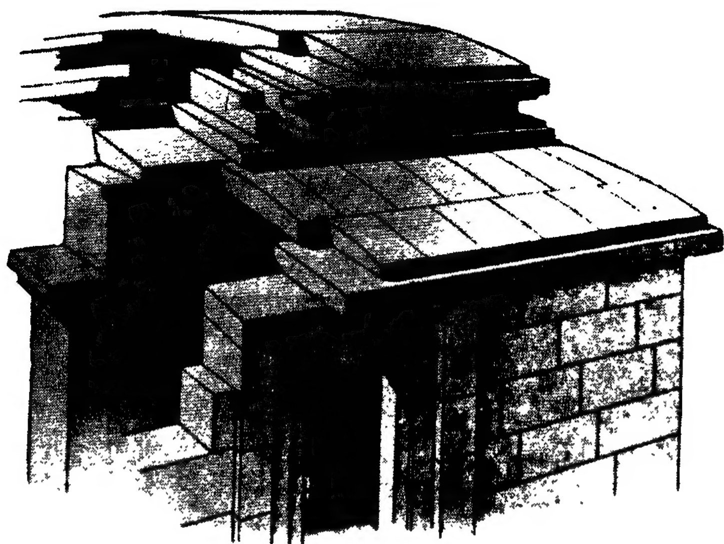
- छत कैसे बनाई गई है? (13)

चित्र-10 में 8वीं सदी के एक मंदिर के ढांचे का रेखाचित्र दिया गया है। इसका अध्ययन कीजिए।

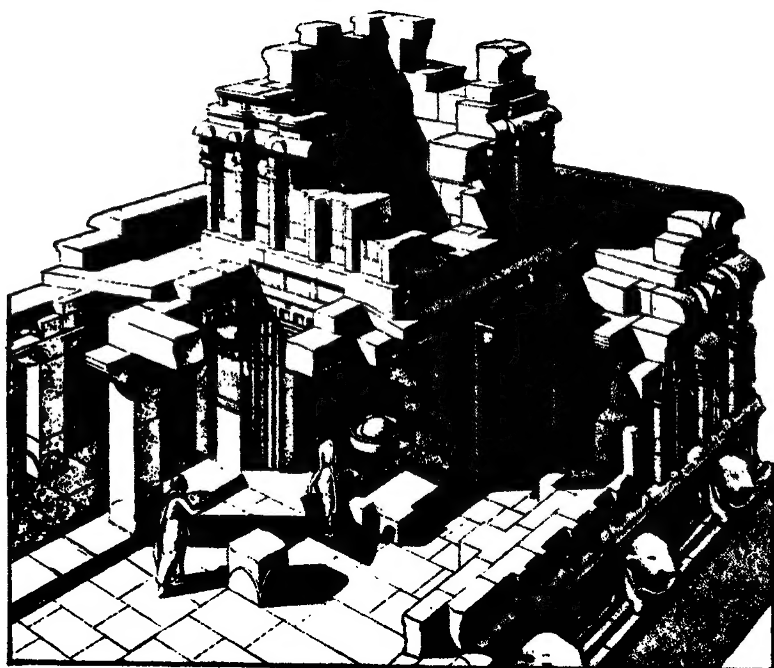
- स्तूपों को बनाने के ढंग और इन मंदिरों को बनाने के ढंग में क्या फर्क है? (14)

- किसमें पत्थर की शिलाओं के खिसकने, लुढ़कने को रोकने के लिए ज़्यादा सावधानी बरतनी पड़ी होगी? (15)

यह सावधानी कैसे बरती गई होगी? सभी पत्थरों के आकार नाप और कटाई पर गौर कीजिए।



चित्र 10. आठवीं सदी के एक मंदिर का ढांचा



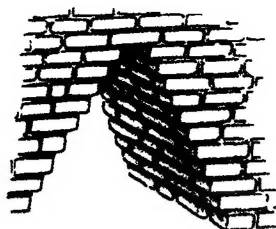
चित्र 11. छटवीं सदी का एक मंदिर – जीर्ण अवस्था में।

अब कहीं भी मंदिर आदि बनाए जा सकते थे, क्योंकि पत्थर की शिलाओं को बड़ी सावधानी से काटने और एक के ऊपर एक इस प्रकार जमाने का अनुभव कारीगरों ने हासिल कर लिया था कि वे गिरे नहीं। पत्थर या ईंटों को चूने व गारे के घोल से मज़बूती से जोड़ने की विधि उन दिनों के कारीगर ज़्यादा इस्तेमाल नहीं करते थे। वैसे भी स्तूप या गुफा चैत्य बनाने में इसकी ज़रूरत भी नहीं थी और भारी पत्थर की शिलाओं से स्वतंत्र भवन बनाने में भी चूने-गारे के जोड़ की बहुत ज़रूरत नहीं होती। पत्थर एक-दूसरे पर भार के सहारे ही संतुलित, सधे हुए रहते हैं। अचरज होता है कि बिना जोड़े

इन भव्य मंदिरों के पत्थर इतने सालों के बाद भी आज तक टिके हुए हैं।

धीरे-धीरे कारीगरों का अनुभव भी बढ़ता गया व हौसला भी। शुरू के मंदिरों की छतें सपाट थीं पर शीघ्र ही मंदिरों पर ऊंचे-ऊंचे शिखर बनाने की कोशिश की गई।

चित्र-11 को देखकर हम समझ सकते हैं कि छत को सपाट न रखकर शिखर के रूप में कैसे उठाया जाने लगा था। शिखर आमतौर पर ऐसे बनते थे कि नीचे चौड़े हों और ऊपर उठते हुए क्रमशः संकरे होते जाएं। क्या आपने गौर किया है कि शिखर को ऊपर संकरा कैसे किया जाता है? एक प्रचलित तकनीक है जिसे अंग्रेजी में कॉर्बेलिंग के नाम से जाना जाता है।



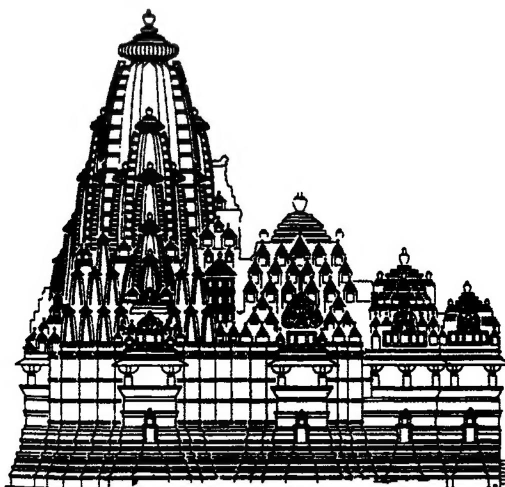
चित्र 12. कॉर्बेलिंग का तरीका

चित्र-12 में ईंट से बने नमूने को देखिए। इसी तरह ईंट या पत्थर की शिलाओं को भी क्रमशः थोड़ा आगे खिसकाकर जमाया जाता था। दीवार के दोनों तरफ से जब ऐसा किया जाता है तब दोनों के बीच का अंतराल संकरा होता जाता है और अंत में एकदम ऊपर दोनों दीवारों की ईंटें या शिलाएं

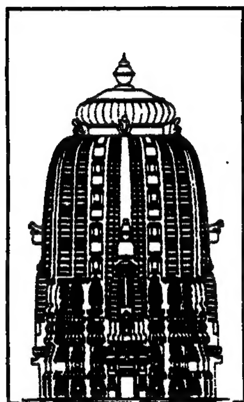
एक ही बिन्दु पर आकर मिल जाती हैं। इस तकनीक में भी सभी ईंटों या शिलाओं का भार नीचे की ओर सीधा लगता है और बहुत हद तक ऊपर वाली शिला या ईंट का भार नीचे वाली शिलाएं या ईंटें ही सम्हालती हैं।

इस सरल तकनीक से कई तरह के शिखर बनाए गए।

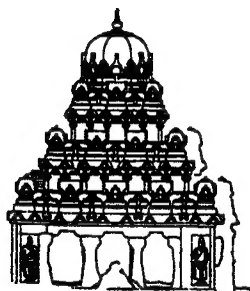
ऊंचे और भव्य शिखरों वाले मंदिरों के पत्थरों में तरह-तरह



चित्र 13. खजुराहो की शैली



चित्र 14. उड़ीसा की शैली



चित्र 15. तमिलनाडू की शैली

की मूर्तियां व आकृतियां तराशने व गढ़ने में भी कारीगरों व कलाकारों ने खूब तन्मयता दिखाई। आज भी लोग जब इन इमारतों को देखते हैं तो कारीगरों के शिल्प-प्रेम से दंग रह जाते हैं।

भव्य इमारतों के कलात्मक प्रभाव का अनुभव हम सबने किया होगा। इसलिए इस लेख में इस पहलू पर ध्यान केन्द्रित न करके हमने निर्माण तकनीकों पर ध्यान केन्द्रित किया है। यह ज़रूरी इसलिए है ताकि हम इन सुन्दर ढांचों को थोड़ा समझने भी लगें।



यह समझें कि बनाने वालों को कौन-सी बातें विरासत में मिली थीं.....और उन्होंने कौन-से नए प्रयोग किये थे.... उन प्रयोगों की क्या सीमाएं थीं और उन्हें कैसे लांघा गया ..?

चित्र 16. हलेबीड के होयसळेश्वर मंदिर (सन 1150 ई) की दीवारों में एक इंच जगह भी खाली नहीं मिलेगी!